Contents lists available at JournalsKart

JAWAHARLAL NEHRU COLLEGE
MULTIDISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

Vol. 1 | Issue No. 1 | Jul–Sept 2026

journal homepage: https://journalskart.com/journals/jncj

Research Article

कबीर के काव्य में मानवीय स्वर

डॉ. हरिनिवास पाण्डेय*

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, पासीघाट, अरुणाचल प्रदेश
मोबाइल – 7005686071

सारांश

भारतीय संत परंपरा में कबीर दास का व्यक्तित्व अत्यंत क्रांतिकारी, लोकमंगलकारी तथा मानवतावादी माना जाता है। उन्होंने मध्यकालीन भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक आडंबर, जातिगत भेदभाव, कर्मकांड, रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों के विरुद्ध निर्भीक स्वर में आवाज उठाई। कबीर केवल एक भक्त कवि नहीं थे, बल्कि वे ऐसे चिंतक थे जिन्होंने मनुष्य को धर्म, जाति और संप्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठाकर देखने का संदेश दिया। उनकी वाणी में सत्य का तेज, अनुभूति की गहराई तथा सामाजिक चेतना का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। कबीर निर्गुण भक्ति धारा के प्रमुख संत थे। उन्होंने ईश्वर को निराकार, सर्वव्यापी और अनुभूति का विषय माना। वे मूर्तिपूजा, बाह्याचार तथा पोथी-ज्ञान के विरोधी थे और आत्मज्ञान तथा आंतरिक साधना को ही सच्चा धर्म मानते थे। उनकी दृष्टि में मानवता ही सर्वोच्च धर्म है। इसीलिए उन्होंने हिंदू-मुस्लिम, ब्राह्मण-शूद्र तथा ऊँच-नीच के भेदों को अस्वीकार करते हुए समता, प्रेम और करुणा का संदेश दिया। कबीर का काव्य लोकभाषा में रचित होने के कारण जनसामान्य के हृदय तक पहुँचा और समाज में व्यापक जागरण का कारण बना। कबीर की वाणी में जहाँ एक ओर तीखा व्यंग्य और सामाजिक विद्रोह है, वहीं दूसरी ओर मानवीय संवेदना और प्रेम की गहरी अनुभूति भी है। उन्होंने अपने युग के समाज को नई दिशा देने का प्रयास किया तथा भक्ति आंदोलन को जनआंदोलन का स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार कबीर भारतीय संस्कृति, मानवतावाद और सामाजिक चेतना के अमर प्रवक्ता के रूप में आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। इस शोध पत्र में हम कबीरदास के काव्य में अभिव्यक्त मानवीय स्वर के स्वरूप को देखेंगे।

बीज शब्द: भारतीय ज्ञान परंपरा भक्तिकाल कबीरदास मानवीय विचार भक्ति चेतना।

भारतीय चिंतन और साधना के क्षेत्र में संत कवि कबीर दास का स्थान अद्वितीय है। मध्यकालीन साधना का मुख्य द्वार कबीर का व्यक्तित्व और उनकी वाणी है। हम जिसे मध्यकालीन साधना के नाम से अभिहित करते हैं उस साधना का आरंभ कबीर जैसे निर्भीक और अपूर्व साधना की वाणी का वरदान पाकर ही आज तक काल की लंबी अवधि के अजस्र प्रवाह के पारावार से क्षीण न होकर और अधिक उज्ज्वल और उर्जस्वित हुई है। कबीर की चर्चा करते हुए नाभादास जैसे वैष्णव भक्त उनकी निर्भीकता, खरेपन और सच्चाई का वर्णन करते हुए कहते हैं –

"हिन्दू तुरक प्रणाम रमैनी सबदी साखी।
पक्षपात नहिं बचन सबन के हित की भाखी।
आरूढ़ दशा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षट दर्शनी।"[1]

के बाहयाचारों जैसे मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, तिलक, माला, कंठी आदि के खण्डन के लिए लिया है। तर्क द्वारा वे बाहरी आडंबर के खोखलेपन को दिखाते हैं। इस तरह तर्क द्वारा सगुण उपासना में जो अन्तर्विरोध है उसे भी व्यक्त किया है। कबीर ने पोथी ज्ञान और उसे अर्जित करने वाले पंडितों की जड़ता को बड़े ही कठोरता से खारिज किया है। पोथी ज्ञान को वह भ्रम में डालने वाला ज्ञान मानते थे। इन्हीं पोथी के सहारे पंडितों ने अबोध जनता को अनेक प्रकार के अंधविश्वास में फँसाकर बहुत समय तक शोषण किया। अत: कबीर ने इन पंडितों की कई स्थलों पर निंदा की और ज्ञान सम्बन्धी अपनी मान्यता को स्पष्ट किया। सारा संसार वेद, शास्त्र, स्मृति आदि ग्रन्थों के जाल में बंधा पड़ा है और लाखों कोशिशों के बावजूद छूट नहीं पाता। केवल राम का सहारा लेने पर ही इससे मुक्ति मिल सकती है।

*संपर्क लेखक: डॉ. हरिनिवास पाण्डेय, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, पासीघाट, अरुणाचल प्रदेश। मोबाइल – 7005686071

Published by JournalsKart – Jawaharlal Nehru College Multidisciplinary Research Journal, Vol. 1, Issue No. 1, Jul–Sept 2026.
© 2026 Jawaharlal Nehru College, Pasighat. All rights reserved.

पड़िया कौन कुमति तुम लागे।
तू राम न जपहि अभागी।
वेद पुरान पड़त अस पाँडे ,गुन खर चन्दन जस भारा।
राम नाम तत समझत नाहीं, अन्ति पड़ै मुखि छारा॥[2]

कबीर ने ज्ञान का आश्रय इसलिए लिया कि वह तर्क और बुद्धि के सहारे आचार बहुल धार्मिक कुरीतियों का भण्डाफोड़ कर सकें। उन्होंने दार्शनिक विवेचन अथवा धर्म के मूल तत्त्व को छोड़कर कर्मकांड में फँसने को ही अज्ञान और माया कहा है। इस प्रकार के कार्यों में लिप्त ज्ञानियों की अपेक्षा गृहस्थ को कबीर उच्च कोटि का मानते हैं। इसीलिए कबीर ज्ञान की चरमावस्था की उपलब्धि 'हरि भक्ति' मानते हैं। जो मनुष्य के हृदय के सभी प्रकार के पाप, दोष और वासना रूपी कीचड़ को धोकर निर्मल बना देती है –

"कहै कबीर कृपा भई, गुरु गया न कहा समझाइ।
हरिदय श्री हरि भेंटिये, जो मन अनतो नहिं जाय।।"

कबीर का ज्ञान एक प्रकार का शस्त्र था जिसकी सहायता से वह धर्म और मत-मतांतर का खण्डन अपने मत का प्रतिपदन और विरोधियों को पराजित करते थे। ज्ञान मार्ग पर चलने वाले ऐसे बहुत थोड़े व्यक्ति हो सकते हैं जिनमें उत्कट साहस और निर्भीकता है चरित्र और सदाचार का कवच है और अपने मत के प्रति अटूट विश्वास है। इस प्रकार कबीर का ज्ञान ईश्वर सम्बन्धी भ्रम के निराकरण और ब्रह्म के निरूपण में प्रयुक्त हुआ है। कबीर के राम निर्गुण हैं या सगुण इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने उसकी विशेषता का वर्णन नहीं किया है यद्यपि उन्होंने 'निर्गुण राम' का प्रयोग किया है, क्योंकि इससे सगुण न होने का आभास मिलता है। वे कहते हैं –

'निर्गुण राम जपहु रे भई'। केवल निर्गुण कहने मात्र से उस सत्ता का बोध नहीं होता। वह कुछ ऐसा है जो शब्दातीत है। उसे शब्दों में बाँधने की अपेक्षा संकेत और निर्देश मात्र से बताना चाहते हैं। उसका सर्वव्यापी रूप ऐसा है जो केवल अन्तर्दृष्टि और प्रेम का अंजन लगाने वाले व्यक्ति को हर क्षण हर जीव में दिखाई दे सकता है। उसे जानने वालों के लिए वह गूँगे का गुड़ की तरह है –

"संतो धोखा काँसू कहिए।
गुण में अवगुण निर्गुण में गुण है, वाट छाँड़ि क्यूँ बहिये।
अजरा अमरा कथै सब कोई, अलख न कथणाँ जाई।
नाटि सरुप वरण नहिं जाके, घट घटि रह्यौ समाई।
प्यंड ब्रह्मंड कथै सब कोई , वाके आदि अरु अंत ने होई।
प्यंड ब्रह्मंड छाँड़ि जो कथियै, कहै कबीर हरि सोई।"[3]

कबीर दास बार-बार चेतावनी देते हैं कि भ्रम में न भूलो। उस परम तत्त्व के स्वरूप को पहचानो जो प्रत्येक जीव में व्याप्त है। कबीर में उत्कट आत्मविश्वास और सत्य की एकनिष्ठ साधना अविचल रूप से व्याप्त हुई है। उनकी वाणी में आक्रोश है लेकिन कटुता नहीं। उनके विरोधी व्यंग्य की तीखी चुभन से छटपटा भले ही जाय लेकिन कबीर पर आक्रमण करने का कोई ठोस आधार नहीं ढूँट पाते। कबीर ने सभी बाह्याचारों और अंधविश्वासों का मूल स्वर पोथी पांडित्य को माना है। पंडित, पुरोहित, मौलवी और महन्त सभी आप्त वाक्यों की दुहाई देकर जनता की बुद्धि को कुंठित कर धर्म की आड़ में स्वार्थ-साधन और शोषण करते हैं। कबीर ने यह अनुभव किया कि लोक मानस का दर्पण अनेक प्रकार की कुरीतियों और विश्वासों के मैल से इतना धूमिल हो गया है कि वह सत्य को अपने हृदय में प्रतिबिम्बित नहीं कर सकता। सत्य को ग्रहण करने के लिए उस लोक मानस पर पड़ी हुई धूमिल रूपी विश्वास की तहों को साफ करना पड़ेगा। अत: कबीर ने वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति और कुरान के नाम पर आरोपित आचारों के मूल उत्स की उपादेयता पर प्रहार किया।

कबीर की वाणी में मानवीय मूल्य संवेदना, हर मनुष्य के प्रति सहज करुणा देखने को मिलती है। मानव-मानव में भेद करने वाले बाहयाडंबरों, मजहबों रूढ़ियों और अंधविश्वासों के प्रति जैसा कठोर रुख कबीर ने अपनाया वैसा किसी और साधू संत या भक्त ने नहीं अपनाया। मानवतावाद की स्थापना हेतु परदु:खकातरता, तितिक्षा, कष्ट सहिष्णुता और अपरिग्रह की नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार का गुण किसी सभ्य व्यक्ति के जीवन में सबसे अधिक देखने को मिलता है। मानवतावाद में विश्वास रखने वाला व्यक्ति ही यथार्थ में सभ्य एवं सुसंस्कृत मनुष्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। कबीर ने अपने जीवन में दूसरों के लिए कष्ट को स्वीकार किया था। वह अपने लिए नहीं संसार के लिए रोते और विलाप करते रहे। खुदा के सभी बन्दों के लिए कबीर ने अपना अस्तित्व समर्पित कर दिया था, संसार के लिए अपने आपको मिटा दिया था –

"सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै॥"

कबीरदास की मान्यता थी कि मानव मात्र की उत्पत्ति एक ही ज्योति से हुई है। एक ही ईश्वर सबमें व्याप्त है सभी मनुष्यों को एक जैसा ही बनाया है फिर उँच-नीच का भेद क्यों स्वीकार किया जाय और मनुष्य-मनुष्य के बीच घृणा का व्यापार चलाया जाय –

"एक बूँद एक मल मूतर एक चाम एक गूदा।
एक ज्योति ते सब ऊपजा कौन ब्राहमण कौन सूदा॥"

हिन्दू समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था के नाम पर समाज में छुआछूत और अस्पृश्यता को कबीर ने कभी स्वीकार नहीं किया। कोई भी मानवतावादी व्यक्ति इस प्रकार की संकीर्ण भावना को स्वीकार नहीं कर सकता। उन्होंने बड़े ही कठोर स्वर में इस सामाजिक कलंक को मिटाने के लिए घोषणा

की। जन्मजात जाति व्यवस्था को उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया। ब्राह्मण और शूद्र का भेद वह मानते ही नहीं थे –

> "जो तू वांमन वंमनी जाया, तौ आन वाट हवै क्यों नहिं आया।
> जो तू तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतर खतना क्यों न कराया।"

कबीर के बारे में लोगों की यह सामान्य सी धारणा है कि वह भक्त होने के साथ-साथ समाज सुधारक थे और हिन्दू मुस्लिम एकता के भी पक्षधर थे। कबीर किसी मतवाद में बँधे न होने के कारण स्वतंत्र उपदेशक की भूमिका में भी दिखाई देते थे। उन्होंने अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य मानव मात्र में समता और एकता की स्थापना ही बनाया। जब उन्होंने धर्म के नाम पर अपने चारों तरफ मानव-मानव के बीच भेदों की खाई देखी, छल कपट का व्यवहार देखा तो वह अपने सुख को छोड़ मानव की पीड़ा को दूर करने में पूरे मनोयोग से जुट गये। कबीर यह भूल गये कि वह जिस समाज में रह रहे हैं उसमें सुधार करना इतना सरल नहीं है जितना वह समझते थे। लेकिन कबीर भी पीछे हटने वालों में कहाँ थे, उन्होंने संस्कृत की इस उक्ति 'मनस्वी कार्यार्थी गणयति सुखं न च दुखं' को चरितार्थ करते हुए मानवजाति को इस संकट से दूर करने का वीणा उठाया। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के अंधविश्वास पर कठोर प्रहार करते समय वे यह भूल जाते थे कि उनके इस प्रहार से दोनों वर्ग तिलमिला उठेगा। वे जानबूझ कर ऐसा प्रहार करते थे, फिर भी आम जन उन्हें कठोर जानते हुए भी प्यार से अपनाना चाहता था। इसे कबीर की विजय के रूप में देखा जा सकता है, या मानवतावाद की विजय के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ संतों द्वारा अपनाया गया विद्रोहात्मक रूप ही 'संत आंदोलन है जो कालांतर में व्यापक रूप धारण कर भक्ति आंदोलन के रूप में प्रवर्तित हुआ। "सामान्यत: आंदोलन का उद्देश्य वर्तमान अवस्था में परिवर्तन लाना होता है जो अधिकांशत: अपने आक्रामक रूप में ही दीखता है। संत साहित्य का आंदोलन के रूप में परिवर्तित होने का कारण भी तत्कालीन वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना ही था जिसका मूल स्वर कुछ अंशों में विद्रोहात्मक था, जो संभवत: स्वाभाविक है।"[4]

संतों के आंदोलन में सम्मिलित समस्त संत कवियों ने वेद मार्ग, ब्रह्मणत्व का प्रदर्शन करने वाले पुरोहितों और पंडितों तथा समाज में प्रचलित रूढ़िवादी परंपराओं, उँच-नीच की भावना से युक्त विकृत प्रवृत्तियों के विरुद्ध खड़े होकर भक्ति आंदोलन को शक्ति प्रदान की। संतों की परंपरा में कबीर का विशिष्ट स्थान रहा है। तभी तो – "उन्होंने अपने जुलाहे के कर्म से समूची दार्शनिकता को वाणी प्रदान करते हुए उसे सकारत्व प्रदान कर दिया सदगुरु को अवतार मानने वाले, मूर्ति-पूजा के विरोधी, पाखंड तथा आडंबर को नकारने वाले, विकृत परंपराओं को अस्वीकार करने वाले इन संतों ने उच्च काव्यादर्श तथा नवीन जीवन मूल्य सृजित किए।"[5] कबीर के समय का समाज, सामाजिक ,धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सभी दृष्टियों से अव्यवस्थित समाज था। इसे व्यवस्थित करने के लिए सर्वप्रथम जन जागृति की आवश्यकता थी। कबीर और अन्य संतों ने इसके लिए क्रांतिकारी अभियान की शुरुआत की, वही आगे चलकर भक्ति आंदोलन के रूप में विकसित हुआ। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को केंद्र में स्थापित करना था जो सदियों से उत्पीड़न एवं उच्च जातियों के अत्याचार का शिकार था। भक्ति आंदोलन ने देखते ही देखते व्यापक रूप धारण कर लिया। इसमें शूद्रों, मुसलमानों एवं स्त्रियों ने बड़े पैमाने पर अपनी भागीदारी निभाई। संभवत: इसीलिए इसे लोक जागरण की भी संज्ञा दी जाती है। फलस्वरूप सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में महान परिवर्तन हुए। समाज की तथा कथित निम्न जातियाँ जो दरिद्रता एवं उच्च जातियों द्वारा दी गयी प्रताड़ना को अपना भाग्य समझकर चुप थीं। उन्हें इस बात का एहसास हो गया कि धर्म, वर्ण जाति के आधार पर उन्हें प्रताड़ित करना, निम्न एवं हेय समझकर भेद-भाव रखना एवं उन्हें उनके अधिकारों से बंचित करना आदि सभी अमानवीय व्यवहार हैं। उच्च जातियों द्वारा रचा गया षडयंत्र मात्र है, क्योंकि सभी प्राणियों की रचना एक ही दिव्य ईश्वरीय ज्योति से हुई है। अत: सभी समान हैं। इस एहसास के बाद निम्न जातियों में प्रतिशोध की चेतना का उदय हुआ। तत्पश्चात जाति प्रथा की जटिलताएँ एवं संकीर्णताएँ धीरे-धीरे समाप्त होने लगीं। जिस भक्ति पर अब तक केवल उच्च जातियों का अधिकार था अब वह मार्ग निम्न जातियों के लिए भी खुल गया। कबीर दास ने समाज में सक्रिय भूमिका के माध्यम से सामाजिक बुराईयों को मिटाकर निम्न जातियों को समाज में सम्मान दिलाया।

कबीर के अनुभव का अंतिम प्रमाण धर्म ग्रंथ अथवा दर्शन नहीं है, बल्कि उनकी स्वानुभूति है। उन्होंने धार्मिक मान्यताओं में कैद अपने चारों तरफ के अव्यवस्थित और अशांत वातावरण का सूक्ष्म निरीक्षण करने के पश्चात यह अनुभव किया कि धर्म, वर्ण और जातिगत पहचान का निषेध अत्यंत आवश्यक है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में –"जातिगत कुलगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत, शास्त्रगत, संप्रदायगत बहुतेरी विशेषताओं के जाल को छिन्न करके ही वह आसन तैयार किया जा सकता है जहाँ एक मनुष्य दूसरे से मनुष्य की हैसियत से ही मिले। जब तक यह नहीं होता तब तक अशांति रहेगी। मारामारी रहेगी। हिंसा-प्रतिस्पर्धा रहेगी। "[6] कबीर धर्म के कारण कभी भी मानव-मानव में भेद की बात को स्वीकार नहीं किए। वे मनुष्य को मनुष्य के रूप में ही देखने के पक्षधर हैं। वे हिन्दू मुस्लिम

ब्राह्मण- शूद्र ऊँच-नीच अथवा छोटा या बड़ा करके नहीं देखते हैं। जो व्यक्ति ऐसी भेदवादी दृष्टि रखता है वह न केवल कबीर की दृष्टि में बल्कि सभी संत समाज की दृष्टि में निन्दनीय होता है। कबीर के अनुसार –

"ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करनी ऊँच न होई।
सोवन कलस सुरे भरया, साधू निंदा सोई॥"[7]

उच्च कुल में जन्म लेने के उपरांत भी व्यक्ति यदि कर्मों से हीन है तो वह संतों की दृष्टि में उसी प्रकार निंदनीय है जैसे स्वर्ण कलश में भरी हुई मदिरा निंदनीय होती है। कुल की उच्चता किसी व्यक्ति को उच्च नहीं बना सकती। कबीर की कल्पना में ऐसा समाज था जिसमें ब्राह्मण-शूद्र का भेद न हो, छुआछूत न हो, जाति-पात न हो। सभी मनुष्य एक समान हों। कबीर मानवतावाद के प्रबल समर्थक हैं। मानवतावादी व्यक्ति अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति का जीव होता है। मनुष्य चूँकि ईश्वर का अंश है। सारे जीव परमपिता परमेश्वर की संतान हैं। इस बात का ज्ञान हो जाने पर मनुष्य अहं की दीवार को तोड़ देता है और मनुष्यत्व के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाता है। मानवतावादी का मूल सिद्धान्त है समस्त प्राणियों को 'आत्मा' से भिन्न न समझना, समस्त जीवों में दया भाव का समान रूप से प्रसार करना, सबके दुखों की अनुभूति को आत्मानुभूति बनाना। इसका मुख्य कारण यह है कि सबका रचियता एक ही है, सभी जीवों में एक ही ईश्वर का अंश है, न कोई बड़ा न कोई छोटा, न कोई ऊँच न कोई नीच सब में एक ही आत्मा का प्रसार है। जब एक ही ईश्वर ने सबको जन्म दिया है सभी एक समान हैं तो फिर जाति पाति का भेद भाव नहीं होना चाहिए। इसीलिए मानव-मानव के बीच किसी भी आधार पर भेद भाव कबीर स्वीकार नहीं करते। इस संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं –"कबीर मनुष्यत्व की भावना के विकास के लिए मनुष्य के हृदय के धर्म अर्थात मानवीय भावों और उनसे विकसित मानवीय गुणों को लोक धर्म का आधार बनाते हैं। समाज में मानवीय भावों और मानवोचित गुणों के प्रसार के लिए मनुष्य विरोधी भावों को हटाना आवश्यक होता है, इसीलिए कबीर, ईर्ष्या, कूरता, कामुकता, कपट, अहंकार, समता आदि मानवीय भावों और गुणों को लोक धर्म बनाने पर ज़ोर देते हैं। वे यह भी चाहते थे कि इन मानवीय भावों विचारों और गुणों के अनुरूप आचरण मनुष्य स्वयं करे, न कि उसके लिए कोई अवतारी राम या कृष्ण।"[8] कबीर ने अंत: करण की शुद्धि के लिए सत्य अहिंसा , अपरिग्रह, धैर्य, संतोष, शील, क्षमा आदि मूल्य भी निर्धारित किए हैं। जो मानवता के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। कबीर कहते हैं –

"जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की साँस लेट बिनु प्राण॥"

कबीर ने अपनी वाणी रूपी उपदेशों में जो बताया है उसे अपनाकर मनुष्य मनुष्यता के शिखर पर पहुँच सकता है। सभी धर्मों और संस्कृतियों ने अपने देश और काल के अनुसार मनुष्य के कल्याण हेतु कुछ सिद्धान्त अपनाए। इन सिद्धांतों को हम मानवतावाद का प्राचीन सिद्धान्त भी कह सकते हैं। ये सिद्धान्त विवाद से परे हैं। इनमें ज्ञान की पराकाष्ठा मिलती है जिसका स्वरूप सभी धर्मों में देखने को मिलता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कबीर ने विश्रृंखलित होते हुए जन साधारण को सत् मार्ग पर ले जाने का प्रयास किया। मानवता का पाठ पढ़ाया। जाति, धर्म, वर्ण के आधार पर भेद भाव का विरोध कर समानता आधारित सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। उनके द्वारा प्रतिपादित ये सिद्धान्त मानवता के क्षेत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। मानवतावादी कबीर ने ईश्वर भक्ति के प्रपंचों को भी चुनौती देने का साहस दिखाया था। उनसे पहले इतने निर्भीक और तटस्थ भाव से किसी और संत ने यह पराक्रम नहीं किया। कबीर ने खंडनात्मक शैली से जो कुछ कहा उसमें मानवतावाद की ही पुकार देखने को मिलती है। किसी जाति धर्म से द्वेष या वैमनस्य नहीं। ईश्वर में अटूट विश्वास के करण नर में नारायण की प्रतीति ने उन्हें मानवतावाद की ओर उन्मुख किया था इसीलिए कभी किसी मानव से उन्होंने घृणा या द्वेष का व्यवहार नहीं किया।

निष्कर्ष

कबीर दास मध्यकालीन भारतीय भक्ति आन्दोलन के ऐसे महान चिंतक, समाज सुधारक और मानवतावादी कवि थे जिन्होंने अपने युग की सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक विसंगतियों पर निर्भीकता से प्रहार किया। उन्होंने जाति-पाँति, ऊँच-नीच, छुआछूत, धार्मिक आडंबर और कर्मकांड का विरोध करते हुए मानव मात्र की समानता और भाईचारे का संदेश दिया। कबीर के अनुसार सच्चा धर्म बाहरी प्रदर्शन में नहीं, बल्कि अंत:करण की शुद्धता, प्रेम, करुणा और सत्यनिष्ठा में निहित है। कबीर की वाणी में ज्ञान, भक्ति और मानवता का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने निर्गुण भक्ति के माध्यम से ईश्वर को सर्वव्यापी और निराकार रूप में स्वीकार किया तथा मनुष्य को आत्मचिंतन और आत्मज्ञान की ओर प्रेरित किया। उनकी वाणी लोकभाषा में होने के कारण जनसामान्य तक सहज रूप में पहुँची और सामाजिक चेतना का माध्यम बनी। आज के समय में भी कबीर के विचार अत्यंत प्रासंगिक हैं, क्योंकि आधुनिक समाज भी जातीय भेदभाव, धार्मिक कट्टरता और मानवीय मूल्यों के संकट से जूझ रहा है। ऐसे में कबीर का मानवतावादी दृष्टिकोण समाज को समरसता, समानता और नैतिकता की दिशा प्रदान करता है। वास्तव में, कबीर केवल एक संत कवि नहीं, बल्कि मानवता के अमर प्रवक्ता हैं।

संदर्भ

1. मा. नाभादास: भक्तमाल, पृष्ठ-72, बंबई भूषण प्रेस,

बंबई, संस्कारण 1979.

2. बाबू श्यामसुंदर दास (संपादक): कबीर ग्रंथवाली, पृष्ठ-100, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, वाराणसी, 24वाँ संस्कारण, संवत् 2061 विक्रमी.
3. बाबू श्यामसुंदर दास (संपादक): कबीर ग्रंथवाली, पृष्ठ-149, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, वाराणसी, 24वाँ संस्कारण, संवत् 2061 विक्रमी.
4. मा. कामता कमलेश (संपादक): हिन्दी अनुशीलन, पृष्ठ-23, भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबाद, संयुक्तांक, मार्च-दिसंबर, वर्ष-1999-2000 ई.
5. मा. प्रदीप सक्सेना (संपादक): नवजागरण की इतिहास चेतना, पृष्ठ-161-162, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष- 2017.
6. मा. बलदेव वंशी: कबीर की चिंता, पृष्ठ- 10, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष 2002.
7. बाबू श्यामसुंदर दास (संपादक): कबीर ग्रंथवाली, पृष्ठ-37, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, वाराणसी, 24वाँ संस्कारण, संवत् 2061 विक्रमी.
8. डॉ. मैनेजर पाण्डेय: भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृष्ठ-33, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1993,